॥ श्रीहरिः ॥

310▲

सावित्री और सत्यवान्

गीताप्रेस गोरखपुर

GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

सम्पादक—जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

सावित्री और सत्यवान्

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

सम्पादक—
जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

वेदव्यासजीके लिये आया है—'अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः। अभाललोचनः शम्भुः भगवान् बादरायणः।' **अर्थात् भगवान् वेदव्यासजी चार मुखोंसे रहित ब्रह्मा हैं, दो भुजाओंवाले दूसरे विष्णु हैं और ललाटस्थित नेत्रसे रहित शंकर हैं अर्थात् वे ब्रह्मा-विष्णु-महेशरूप हैं। संसारमें जितनी भी कल्याणकारी, विलक्षण बातें हैं, वे सब वेदव्यासजीके ही उच्छिष्ट हैं**—'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'। **ऐसे वेदव्यासजी महाराजने जीवोंके कल्याणके लिये महाभारतकी रचना की है। उस महाभारतका संक्षेप जीवन्मुक्त तत्त्वज्ञ भगवत्प्रेमी महापुरुष सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने किया है। इस प्रकार वेदव्यासजीके द्वारा मूलरूपसे और सेठजीके द्वारा संक्षिप्तरूपसे लिखी हुई महाभारतमेंसे सबके लिये उपयोगी कुछ कथाओंका चयन किया गया है। इन कथाओंमें एक विशेष शक्ति है, जिससे इनको पढ़नेसे विशेष लाभ होता है। उनमेंसे सावित्री और सत्यवान्‌की कथा पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। पाठकोंसे मेरा विनम्र निवेदन है कि वे इस पुस्तकको स्वयं भी पढ़ें और दूसरोंको भी पढ़नेके लिये प्रेरित करें।**

विनीत—

स्वामी रामसुखदास

''अभ्यास ऐसा तेज करना चाहिये कि जिसमें अपने शरीरका ज्ञान भी न रहे। भगवान्‌के स्वयं साकार स्वरूपमें आकर चेत करानेपर भी शरीरका ज्ञान न हो, जैसे श्रीसुतीक्ष्ण मुनिको भगवान् श्रीरामचन्द्रके द्वारा जगाये जानेपर भी शरीरका ज्ञान नहीं हुआ था।''

''ऐसी स्थिति शीघ्र प्राप्त करनेके लिये किसी बातकी भी परवाह न कर हर समय कटिबद्ध रहना चाहिये।''

''मनुष्यको समयकी कीमत जाननी चाहिये, समय प्रतिक्षण घट रहा है। मनुष्य-शरीरका समय अमूल्य है। इसे भजन, ध्यान, सत्संगरूप अमूल्य कामोंमें ही लगाना चाहिये। जिनका समय केवल पेट पालनेमें ही जाता है वे तो महान् पशु हैं।''

''संसारका काम करते हुए उस कामका बुरा मालूम होना केवल वैराग्य नहीं है। इसमें हरामीपन भी है। यदि केवल वैराग्य होता तो संसारका कुछ भी काम न करनेके समय निरन्तर भजन-ध्यान ही हुआ करता।''

''खाना, पीना, चलना, फिरना, बोलना आदि सांसारिक कार्य तो बेगार हैं, जबरदस्ती करने पड़ते हैं, अपना निजका कार्य तो केवल एक भगवत्स्मरण ही है, जो हर समय करना चाहिये।''

''फलासक्ति छोड़कर मालिकके लिये जो कुछ भी कार्य किया जाता है, वह उसका भजन ही है (चाहे उसमें नाम-स्मरण न हो) इस भूलको भूल नहीं समझना चाहिये।''

''जबतक भजन-ध्यानमें कठिनता प्रतीत होती है तबतक विश्वासकी त्रुटि है। वास्तवमें भजन-ध्यानमें कोई परिश्रम नहीं है।''

—श्रीजयदयालजी गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

सावित्री-चरित्र

सावित्रीका जन्म और विवाह

जयद्रथको जीतकर उसके हाथसे द्रौपदीको छुड़ा लेनेके पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर मुनिमण्डलीके साथ बैठे थे। महर्षिलोग भी पाण्डवोंपर आये हुए संकटके कारण बारम्बार शोक प्रकट कर रहे थे। उनमेंसे मार्कण्डेयको लक्ष्य करके युधिष्ठिरने कहा—'भगवन्! आप भूत, भविष्य और वर्तमान सब कुछ जानते हैं। देवर्षियोंमें भी आपका नाम विख्यात है। आपसे मैं अपने हृदयका एक सन्देह पूछता हूँ, उसका निवारण कीजिये। यह सौभाग्यशालिनी द्रुपदकुमारी यज्ञकी वेदीसे प्रकट हुई है, इसे गर्भवासका कष्ट नहीं सहना पड़ा है। महात्मा पाण्डुकी पुत्रवधू होनेका भी गौरव इसे मिला है। इसने कभी भी पाप या निन्दित कर्म नहीं किया है। यह धर्मका तत्त्व जानती और उसका पालन करती है। ऐसी स्त्रीका भी पापी जयद्रथने अपहरण किया। यह अपमान हमें देखना पड़ा। सगे-सम्बन्धियोंसे दूर जंगलमें रहकर हम तरह-तरहके कष्ट भोग रहे हैं। अतः पूछते हैं—आपने हमारे समान मन्दभाग्य पुरुष इस जगत्में कोई और भी देखा या सुना है?'

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! श्रीरामचन्द्रजीको भी वनवास और स्त्रीवियोगका महान् कष्ट भोगना पड़ा है। राक्षसराज दुरात्मा रावण मायाजाल बिछाकर आश्रमपरसे श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी सीताको हर ले गया था। जटायुने उसके कार्यमें विघ्न खड़ा किया तो उसने उसको मार डाला। फिर श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवकी सहायतासे समुद्रपर पुल बाँधकर लंकामें गये और अपने तीखे बाणोंसे लंकाको भस्मकर सीताको वापस लाये।

महाबाहु युधिष्ठिर! इस प्रकार पूर्वकालमें अतुलित पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी वनवासके कारण बड़ा भयंकर कष्ट भोग चुके हैं। पुरुषसिंह! तुम क्षत्रिय हो, शोक मत करो; तुम अपने भुजबलके भरोसे प्रत्यक्ष फल देनेवाले मार्गपर चल रहे हो। तुम्हारा इसमें अणुमात्र भी अपराध नहीं है। रामचन्द्रजी तो अकेले ही भयंकर पराक्रमी रावणको युद्धमें मारकर जानकीजीको ले आये थे। उनके सहायक तो केवल वानर और रीछ ही थे। इन सब बातोंपर तुम विचार करो। इस प्रकार मतिमान् मार्कण्डेयजीने राजा युधिष्ठिरको धैर्य बँधाया।

युधिष्ठिरने पूछा—मुनिवर! इस द्रौपदीके लिये मुझे जैसा शोक होता है, वैसा न तो अपने लिये होता है, न इन भाइयोंके लिये और न राज्य छिन जानेके लिये ही। यह जैसी पतिव्रता है, वैसी क्या कोई दूसरी भाग्यवती नारी भी आपने पहले कभी देखी या सुनी है?

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! राजकन्या सावित्रीने जिस प्रकार यह कुलकामिनियोंका परम सौभाग्यरूप पातिव्रत्यका सुयश प्राप्त किया था, वह मैं कहता हूँ; सुनो। मद्रदेशमें अश्वपति नामका एक बड़ा ही धार्मिक और ब्राह्मणसेवी राजा था। वह अत्यन्त उदारहृदय, सत्यनिष्ठ, जितेन्द्रिय, दानी, चतुर, पुरवासी और देशवासियोंका प्रिय, समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाला और क्षमाशील था। उस नियमनिष्ठ राजाकी धर्मशीला ज्येष्ठा पत्नीको गर्भ रहा और यथासमय उसके एक कमलनयनी कन्या उत्पन्न हुई। राजाने प्रसन्न होकर उस कन्याके जातकर्मादि सब संस्कार किये। वह कन्या सावित्रीके मन्त्रद्वारा

हवन करनेपर सावित्री देवीने ही प्रसन्न होकर दी थी; इसलिये ब्राह्मणोंने और राजाने उसका नाम 'सावित्री' रखा।

मूर्तिमती लक्ष्मीके समान वह कन्या धीरे-धीरे बढ़ने लगी। यथासमय उसने युवावस्थामें प्रवेश किया। कन्याको युवती हुई देखकर महाराज अश्वपति बड़े चिन्तित हुए। कोई वर मिलता न देखकर उन्होंने सावित्रीसे कहा, 'बेटी! अब तू विवाहके योग्य हो गयी है और अभीतक तेरे लिये कोई वर नहीं मिल सका है, इसलिये तू स्वयं ही अपने योग्य कोई वर खोज ले। धर्मशास्त्रकी ऐसी आज्ञा है कि विवाहके योग्य हो जानेपर जो कन्यादान नहीं करता, वह पिता निन्दनीय है; ऋतुकालमें जो स्त्रीसमागम नहीं करता, वह पति निन्दाका पात्र है और पतिके मर जानेपर उस विधवा माताका जो पालन नहीं करता, वह पुत्र निन्दनीय है।* अतः तू शीघ्र ही वरकी खोज कर ले और ऐसा कर, जिससे मैं देवताओंकी दृष्टिमें अपराधी न बनूँ।' पुत्रीसे ऐसा कहकर उन्होंने अपने बूढ़े मन्त्रियोंको आज्ञा दी कि 'आपलोग सवारी लेकर सावित्रीके साथ जायँ।'

तपस्विनी सावित्रीने कुछ सकुचाते हुए पिताकी आज्ञा स्वीकार की और उनके चरणोंमें नमस्कार कर सुवर्णके रथमें चढ़कर बूढ़े मन्त्रियोंके साथ वरकी खोज करनेके लिये चल दी। वह राजर्षियोंके रमणीय तपोवनोंमें गयी और उन माननीय वृद्ध पुरुषोंके चरणोंकी वन्दना कर फिर क्रमशः अन्य सब वनोंमें भी विचरती रही। इस तरह वह सभी तीर्थोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको धन-दान करती विभिन्न देशोंमें घूमती रही।

---

* अप्रदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन् पतिः।
मृते भर्तरि पुत्रश्च वाच्यो मातुररक्षिता॥ (महा०, वन० २९३। ३५)

राजन्! एक दिन मद्रराज अश्वपति अपनी सभामें बैठे हुए देवर्षि नारदसे बातें कर रहे थे। उसी समय मन्त्रियोंके सहित सावित्री समस्त तीर्थोंमें विचरकर अपने पिताके घर पहुँची। वहाँ पिताको नारदजीके साथ बैठे हुए देखकर उसने दोनोंहीके चरणोंमें प्रणाम किया। उसे देखकर नारदजीने पूछा, 'राजन्! आपकी यह पुत्री कहाँ गयी थी और अब कहाँसे आ रही है? यह युवती हो गयी है, फिर भी आप किसी वरके साथ इसका विवाह क्यों नहीं करते?' अश्वपतिने कहा,'इसे मैंने इसी कामके लिये भेजा था और यह आज ही लौटी है। आप इसीसे पूछिये इसने किस वरको चुना है।' तब पिताके यह कहनेपर कि तू अपना सब वृत्तान्त सुना दे, सावित्रीने उनकी बात मानकर कहा—'शाल्वदेशमें द्युमत्सेन नामसे विख्यात एक बड़े धर्मात्मा राजा थे। पीछे वे अन्धे हो गये थे। इस प्रकार आँखें चली जानेसे और पुत्रकी बाल्यावस्था होनेसे अवसर पाकर उनके पूर्वशत्रु एक पड़ोसी राजाने उनका राज्य हर लिया। तब अपने बालक पुत्र और भार्याके सहित वे वनमें चले आये और बड़े-बड़े व्रतोंका पालन करते हुए तपस्या करने लगे। उनके कुमार सत्यवान्, जो अब वनमें रहते हुए बड़े हो गये हैं, मेरे अनुरूप हैं और मैंने मनसे उन्हींको अपने पतिरूपसे वरण किया है।'

यह सुनकर नारदजीने कहा—राजन्! बड़े खेदकी बात है। हाय! सावित्रीसे तो बड़ी भूल हो गयी, जो इसने बिना जाने ही गुणवान् समझकर सत्यवान्‌को वर लिया। इस कुमारके पिता सत्य बोलते हैं और माता भी सत्यभाषण ही करती है। इसीसे ब्राह्मणोंने इसका नाम 'सत्यवान्' रखा है।

राजाने पूछा—अच्छा, इस समय अपने पिताका लाड़ला राजकुमार सत्यवान् तेजस्वी, बुद्धिमान्, क्षमावान् और शूरवीर तो है न?

नारदजी बोले—वह द्युमत्सेनका वीर पुत्र सूर्यके समान तेजस्वी, बृहस्पतिके समान बुद्धिमान्, इन्द्रके समान वीर, पृथ्वीके समान क्षमाशील, रन्तिदेवके समान दाता, उशीनरके पुत्र शिबिके समान ब्रह्मण्य और सत्यवादी, ययातिके समान उदार, चन्द्रमाके समान प्रियदर्शन और अश्विनीकुमारोंके समान अद्वितीय रूपवान् है। वह जितेन्द्रिय है, मृदुल स्वभाव है, शूरवीर है, सत्यवादी है। मिलनसार है, ईर्ष्याहीन है, लज्जाशील है और तेजस्वी है। तप और शीलमें बढ़े हुए ब्राह्मणलोग संक्षेपमें उसके विषयमें ऐसा कहते हैं कि उसमें सरलताका निरन्तर निवास रहता है और उसमें उसकी अविचल स्थिति हो गयी है।

अश्वपतिने कहा—भगवन्! आप तो उसे सभी गुणोंसे सम्पन्न बता रहे हैं। अब यदि उसमें कोई दोष हों तो वे भी मुझे बताइये।

नारदजीने कहा—उसमें केवल एक ही दोष है; किन्तु उससे उसके सारे गुण दबे हुए हैं तथा किसी प्रयत्नद्वारा भी उसे निवृत्त नहीं किया जा सकता। उसके सिवा उसमें और कोई दोष नहीं है। वह दोष यह है कि आजसे एक वर्ष बाद सत्यवान्की आयु समाप्त हो जायगी और वह देहत्याग कर देगा।

तब राजाने सावित्रीसे कहा—सावित्री! यह आ देख, तू फिर जा और किसी दूसरे वरकी खोज कर। देवर्षि नारदजी मुझसे कहते हैं कि सत्यवान् तो अल्पायु है, वह एक वर्ष पीछे ही देहत्याग कर देगा।

सावित्रीने कहा—पिताजी! काष्ठ-पाषाणादिका टुकड़ा एक बार ही उससे अलग होता है, कन्यादान एक बार ही किया जाता है और 'मैंने दिया' ऐसा संकल्प भी एक बार ही होता है। ये तीन बातें एक-एक बार ही हुआ करती हैं। अब तो जिसे मैंने एक बार वरण कर लिया—वह दीर्घायु हो अथवा अल्पायु तथा गुणवान् हो अथवा गुणहीन—वही मेरा पति होगा; किसी अन्य पुरुषको मैं नहीं वर सकती।[१] पहले मनसे निश्चय करके फिर वाणीसे कहा जाता है और उसके बाद कर्मद्वारा किया जाता है। अतः मेरे लिये तो मन ही परम प्रमाण है।

नारदजी बोले—राजन्! तुम्हारी पुत्री सावित्रीकी बुद्धि निश्चयात्मिका है। इसलिये इसे किसी भी प्रकार इस धर्मसे विचलित नहीं किया जा सकता। सत्यवान्‌में जो-जो गुण हैं, वे किसी दूसरे पुरुषमें हैं भी नहीं। अतः मुझे भी यही अच्छा जान पड़ता है कि आप उसे कन्यादान कर दें।[२]

राजाने कहा—आपने जो बात कही है, वह बहुत ठीक है

१-सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत् सकृत्॥
दीर्घायुरथवाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा।
सकृद् वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम्॥
(महा०, वन० २९४। २६-२७)

२-स्थिरा बुद्धिर्नरश्रेष्ठ सावित्र्या दुहितस्तव।
नैषा वारयितुं शक्या धर्मादस्मात् कथंचन॥
नान्यस्मिन् पुरुषे सन्ति ये सत्यवति वै गुणाः।
प्रदानमेव तस्मान्मे रोचते दुहितुस्तव॥
(महा०, वन० २९४। २९-३०)

और किसी प्रकार टाली नहीं जा सकती। अतः मैं ऐसा ही करूँगा। मेरे तो आप ही गुरु हैं।

फिर कन्यादानके विषयमें नारदजीकी आज्ञाको ही शिरोधार्य समझ राजा अश्वपतिने सब वैवाहिक सामग्री एकत्रित करायी और वृद्ध ब्राह्मण तथा पुरोहितके सहित सभी ऋत्विजोंको बुलाकर शुभ दिनमें कन्याके सहित प्रस्थान किया। जब एक पवित्र वनमें राजा द्युमत्सेनके आश्रमपर पहुँचे तो ब्राह्मणोंके साथ पैदल ही उन राजर्षिके पास गये। वहाँ उन्होंने नेत्रहीन राजा द्युमत्सेनको सालवृक्षके नीचे एक कुशके आसनपर बैठे देखा। राजा अश्वपतिने राजर्षि द्युमत्सेनकी यथायोग्य पूजा की और विनीत शब्दोंमें उन्हें अपना परिचय दिया। धर्मज्ञ राजर्षिने अर्घ्य और आसन देकर राजाका सत्कार किया और पूछा, 'कहिये, किस निमित्तसे पधारनेकी कृपा की?' तब अश्वपतिने कहा, 'राजर्षे! मेरी यह सावित्री नामकी एक रूपवती कन्या है। इसे अपने धर्मके अनुसार आप अपनी पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार कीजिये।'

द्युमत्सेनने कहा—हम राज्यसे भ्रष्ट हो चुके हैं और यहाँ वनमें रहकर संयमपूर्वक तपस्वियोंका जीवन व्यतीत करते हैं। आपकी कन्या तो यह सब कष्ट सहन करनेयोग्य नहीं है। वह यहाँ आश्रममें वनवासके दुःखको सहन करती हुई कैसे रहेगी?

अश्वपतिने कहा—राजन्! सुख और दुःख तो आने-जानेवाले हैं, इस बातको मैं और मेरी पुत्री दोनों जानते हैं। मेरे-जैसे आदमीसे आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये, मैं तो सब प्रकार निश्चय करके ही आपके पास आया हूँ।

द्युमत्सेन बोले—राजन्! मैं तो पहले ही आपके साथ सम्बन्ध करना चाहता था, किन्तु राज्यच्युत होनेके कारण मैंने अपना विचार छोड़ दिया था। अब यदि मेरी पहलेकी अभिलाषा स्वयं ही पूर्ण होना चाहती है तो ऐसा ही हो। आप तो मेरे अभीष्ट अतिथि हैं।

तदनन्तर उस आश्रममें रहनेवाले सभी ब्राह्मणोंको बुलाकर दोनों राजाओंने विधिवत् विवाह-संस्कार कराया और यथायोग्य रीतिसे वर-कन्याको आभूषण आदि भी दिये। इसके पश्चात् राजा अश्वपति बड़े आनन्दसे अपने भवनको लौट आये। उस सर्वगुणसम्पन्ना भार्याको पाकर सत्यवान्को बड़ी प्रसन्नता हुई और अपना मनमाना वर पाकर सावित्रीको भी बड़ा आनन्द हुआ। पिताके चले जानेपर सावित्रीने सब आभूषण उतार दिये और वल्कल वस्त्र तथा गेरुए कपड़े पहन लिये। उसकी सेवा, गुण, विनय, संयम और सबके मनके अनुसार काम करनेसे सभीको बहुत सन्तोष हुआ। उसने शारीरिक सेवा और सब प्रकारके वस्त्राभूषणोंद्वारा सासको और वाणीके संयमपूर्वक देवोचित सत्कारद्वारा ससुरको सन्तुष्ट किया। इसी प्रकार मधुर भाषण, कार्यकुशलता, शान्ति और एकान्तमें सेवा करके पतिदेवको प्रसन्न किया*। इस प्रकार उस आश्रममें रहकर तपस्या करते हुए उन्हें कुछ समय बीता।

❑❑

---

* श्वश्रूं शरीरसत्कारैः सर्वैराच्छादनादिभिः।
श्वशुरं देवसत्कारैर्वाचः संयमनेन च॥
तथैव प्रियवादेन नैपुणेन शमेन च।
रहश्चैवोपचारेण भर्तारं पर्यतोषयत्॥
(महा०, वन० २९५। २०-२१)

सावित्रीद्वारा सत्यवान्‌को जीवनदान

जब बहुत दिन बीत गये तो अन्तमें वह समय भी आ ही गया, जिस दिन सत्यवान् मरनेवाला था। सावित्री एक-एक दिन गिनती रहती थी और उसके हृदयमें नारदजीका वचन सदा ही बना रहता था। जब उसने देखा कि अब इन्हें चौथे दिन मरना है तो उसने तीन दिनका व्रत धारण किया और वह रात-दिन स्थिर होकर बैठी रही। कल पतिदेवके प्राण प्रयाण करेंगे, इस चिन्तामें सावित्रीने बैठे-बैठे ही वह रात बितायी। दूसरे दिन यह सोचकर कि आज ही वह दिन है, उसने सूर्यदेवके चार हाथ ऊपर उठते-उठते अपने सब आह्निक कृत्य समाप्त किये और प्रज्वलित अग्निमें आहुतियाँ दीं। फिर सभी ब्राह्मण, बड़े-बूढ़े, सास और ससुरको क्रमशः प्रणामकर संयमपूर्वक हाथ जोड़कर खड़ी रही। उस तपोवनमें रहनेवाले सभी तपस्वियोंने उसे अवैधव्यके सूचक शुभ आशीर्वाद दिये* और सावित्रीने तपस्वियोंकी उस वाणीको 'ऐसा ही हो' इस प्रकार ध्यानयोगमें स्थित होकर ग्रहण किया। इसी समय सत्यवान् कन्धेपर कुल्हाड़ी रखकर वनसे समिधा लानेको तैयार हुआ। तब सावित्रीने कहा, 'आप अकेले न जायँ, मैं भी आपके साथ चलूँगी।' सत्यवान्‌ने कहा, 'प्रिये! तुम पहले कभी वनमें गयी नहीं हो, वनका रास्ता बड़ा

---

* ततः सर्वान् द्विजान् वृद्धान् श्वश्रूं श्वशुरमेव च।
अभिवाद्यानुपूर्व्येण प्राञ्जलिर्नियता स्थिता॥
अवैधव्याशिषस्ते तु सावित्र्यर्थं हिताः शुभाः।
ऊचुस्तपस्विनः सर्वे तपोवननिवासिनः॥
(महा०, वन० २९६। ११-१२)

कठिन होता है और तुम उपवासके कारण दुर्बल हो रही हो; फिर इस विकट मार्गमें पैदल ही कैसे चलोगी ?' सावित्री बोली, 'उपवासके कारण मुझे किसी प्रकारकी शिथिलता या थकान नहीं है, चलनेके लिये मनमें बहुत उत्साह है। इसलिये आप रोकिये मत।' सत्यवान्ने कहा, 'यदि तुम्हें चलनेका उत्साह है तो मैं तो जो तुम्हें अच्छा लगे, करनेको तैयार हूँ; किन्तु तुम माताजी और पिताजीसे भी आज्ञा ले लो।'

तब सावित्रीने अपने सास-ससुरको प्रणाम करके कहा, 'मेरे स्वामी फलादि लानेके लिये वनमें जा रहे हैं। यदि सासजी और ससुरजी आज्ञा दें तो आज मैं भी इनके साथ जाना चाहती हूँ।' इसपर द्युमत्सेनने कहा, 'जबसे पिताके कन्यादान करनेपर सावित्री बहू बनकर हमारे आश्रममें रही है, तबसे मुझे इसके किसी भी बातके लिये याचना करनेका स्मरण नहीं है। अतः आज इसकी इच्छा अवश्य पूरी होनी चाहिये। अच्छा, बेटी! तू जा मार्गमें सत्यवान्की सँभाल रखना।'

इस प्रकार सास-ससुरकी आज्ञा पाकर यशस्विनी सावित्री अपने पतिदेवके साथ चल दी। वह ऊपरसे तो हँसती-सी जान पड़ती थी, किन्तु उसके हृदयमें दुःखकी ज्वाला धधक रही थी। वीर सत्यवान्ने पहले तो अपनी पत्नीके सहित फल बीनकर एक टोकरी भर ली और फिर वह लकड़ियाँ काटने लगा। लकड़ी काटते-काटते परिश्रमके कारण उसे पसीना आ गया और इसीसे उसके सिरमें दर्द होने लगा। इस प्रकार श्रमसे पीड़ित होकर उसने सावित्रीके पास जाकर कहा, 'प्रिये! आज लकड़ी काटनेके परिश्रमसे मेरे सिरमें दर्द होने लगा है तथा सारे अंगोंमें

और हृदयमें भी दाह-सा होता है; मुझे शरीर कुछ अस्वस्थ-सा जान पड़ता है और ऐसा मालूम होता है कि मानो मेरे सिरमें कोई बर्छी छेद रहा है। कल्याणी ! अब मैं सोना चाहता हूँ, बैठनेकी मुझमें शक्ति नहीं है।'

यह सुनकर सावित्री अपने पतिके पास आयी और उसका सिर गोदमें रखकर पृथ्वीपर बैठ गयी। फिर वह नारदजीकी बात याद करके उस मुहूर्त, क्षण और दिनका विचार करने लगी। इतनेहीमें उसे वहाँ एक पुरुष दिखायी दिया। वह लाल वस्त्र पहने था, उसके सिरपर मुकुट था और अत्यन्त तेजस्वी होनेके कारण वह मूर्तिमान् सूर्यके समान जान पड़ता था। उसका शरीर श्याम और सुन्दर था, नेत्र लाल-लाल थे, हाथमें पाश था और देखनेमें वह बड़ा भयानक जान पड़ता था। वह सत्यवान्के पास खड़ा हुआ उसीकी ओर देख रहा था। उसे देखते ही सावित्रीने धीरेसे पतिका सिर भूमिपर रख दिया और सहसा खड़ी हो गयी। उसका हृदय धड़कने लगा और उसने अत्यन्त आर्त होकर उससे हाथ जोड़कर कहा, 'मैं समझती हूँ आप कोई देवता हैं, क्योंकि आपका यह शरीर मनुष्यका-सा नहीं है। यदि आपकी इच्छा हो तो बताइये, आप कौन हैं और क्या करना चाहते हैं।'

यमराजने कहा—सावित्री ! तू पतिव्रता और तपस्विनी है, इसलिये मैं तुझसे सम्भाषण कर लूँगा। तू मुझे यमराज जान।* तेरे

---

* पतिव्रतासि सावित्रि तथैव च तपोऽन्विता।
अतस्त्वामभिभाषामि विद्धि मां त्वं शुभे यमम्॥
(महा०, वन० २९७। १२)

पति इस राजकुमार सत्यवान्‌की आयु समाप्त हो चुकी है, अब मैं इसे पाशमें बाँधकर ले जाऊँगा। यही मैं करना चाहता हूँ।

सावित्रीने कहा—भगवन्! मैंने तो ऐसा सुना है कि मनुष्योंको लेनेके लिये आपके दूत आया करते हैं। यहाँ स्वयं आप ही कैसे पधारे?

यमराज बोले—सत्यवान् धर्मात्मा, रूपवान् और गुणोंका समुद्र है। यह मेरे दूतोंद्वारा ले जाये जानेयोग्य नहीं है। इसीसे मैं स्वयं आया हूँ।

इसके बाद यमराजने बलात् सत्यवान्‌के शरीरमेंसे पाशमें बँधा हुआ अंगुष्ठमात्र परिमाणवाला जीव निकाला। उसे लेकर वे दक्षिणकी ओर चल दिये। तब दुःखातुरा सावित्री भी यमराजके पीछे ही चल दी। यह देखकर यमराजने कहा, 'सावित्री! तू लौट जा और इसका और्ध्वदैहिक संस्कार कर। तू पतिसेवाके ऋणसे मुक्त हो गयी है। पतिके पीछे भी तुझे जहाँतक आना था, वहाँतक आ चुकी है।'

सावित्री बोली—मेरे पतिदेवको जहाँ भी ले जाया जायगा अथवा जहाँ वे स्वयं जायँगे, वहीं मुझे भी जाना चाहिये। यही सनातनधर्म है। तपस्या, गुरुभक्ति, पतिप्रेम, व्रताचरण और आपकी कृपासे मेरी गति कहीं भी रुक नहीं सकती।*

यमराज बोले—सावित्री! तेरी स्वर, अक्षर, व्यंजन एवं

---

* यत्र मे नीयते भर्ता स्वयं वा यत्र गच्छति।
मया च तत्र गन्तव्यमेष धर्मः सनातनः॥
तपसा गुरुभक्त्या च भर्तुः स्नेहाद् व्रतेन च।
तव चैव प्रसादेन न मे प्रतिहता गतिः॥
(महा०, वन० २९७। २१-२२)

युक्तियोंसे युक्त बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तू सत्यवान्‌के जीवनके सिवा और कोई भी वर माँग ले। मैं तुझे सब प्रकारका वर देनेको तैयार हूँ।

सावित्रीने कहा—मेरे ससुर राज्यभ्रष्ट होकर वनमें रहने लगे हैं और उनकी आँखें भी जाती रही हैं। सो वे आपकी कृपासे नेत्र प्राप्त करें, बलवान् हो जायँ और अग्नि तथा सूर्यके समान तेजस्वी हो जायँ।

यमराज बोले—साध्वी सावित्री ! मैं तुझे यह वर देता हूँ। तूने जैसा कहा है, वैसा ही होगा। तू मार्ग चलनेसे शिथिल-सी जान पड़ती है। अब तू लौट जा, जिससे तुझे विशेष थकान न हो।

सावित्रीने कहा—पतिदेवके समीप रहते हुए मुझे श्रम कैसे हो सकता है। जहाँ मेरे प्राणनाथ रहेंगे, वहीं मेरा निश्चल आश्रम होगा। देवेश्वर ! जहाँ आप पतिदेवको ले जा रहे हैं, वहाँ मेरी भी गति होनी चाहिये। इसके सिवा मेरी एक बात और सुनिये। सत्पुरुषोंका तो एक बारका समागम भी अत्यन्त अभीष्ट होता है। उससे भी बढ़कर उनके साथ प्रेम हो जाना है। संतसमागम निष्फल कभी नहीं होता, अतः सर्वदा सत्पुरुषोंके ही साथ रहना चाहिये।*

---

* श्रमः कुतो भर्तृसमीपतो हि मे
यतो हि भर्ता मम सा गतिर्ध्रुवा।
यतः पतिं नेष्यसि तत्र मे गतिः
सुरेश भूयश्च वचो निबोध मे॥
सतां सकृत्सङ्गतमीप्सितं परं
ततः परं मित्रमिति प्रचक्षते।
न चाफलं सत्पुरुषेण सङ्गतं
ततः सतां सन्निवसेत् समागमे॥
(महा०, वन० २९७। २९-३०)

यमराज बोले—सावित्री ! तूने जो हितकी बात कही है, वह मेरे मनको बड़ी ही प्रिय जान पड़ी है। उससे विद्वानोंकी भी बुद्धिका विकास होगा! अतः इस सत्यवान्के जीवनके सिवा तू कोई भी दूसरा वर माँग ले।

सावित्रीने कहा—पहले मेरे मतिमान् ससुरजीका जो राज्य छीन लिया गया है, वह उन्हें स्वयं ही प्राप्त हो जाय और वे अपने धर्मका त्याग न करें—यह मैं आपसे दूसरा वर माँगती हूँ।

यमराज बोले—राजा द्युमत्सेन शीघ्र ही अपने-आप राज्य प्राप्त करेंगे और वे अपने धर्मका भी त्याग नहीं करेंगे। अब तेरी इच्छा पूरी हो गयी; तू लौट जा, जिससे तुझे व्यर्थ श्रम न हो।

सावित्रीने कहा—देव ! इस सारी प्रजाका आप नियमसे संयम करते हैं और उसका नियमन करके उसे अभीष्ट फल भी देते हैं; इसीसे आप 'यम' नामसे विख्यात हैं। अतः मैं जो बात कहती हूँ, उसे सुनिये। मन, वचन और कर्मसे समस्त प्राणियोंके प्रति अद्रोह, सबपर कृपा करना और दान देना—यह सत्पुरुषोंका सनातनधर्म है और इस प्रकारका तो प्रायः यह सभी लोक है—सभी मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार कोमलताका बर्ताव करते हैं। किन्तु जो सत्पुरुष हैं, वे तो अपने पास आये शत्रुओंपर भी दया करते हैं।*

यमराज बोले—कल्याणी! प्यासे आदमीको जैसे जल

---

* प्रजास्त्वयैता नियमेन संयता
नियम्य चैता नयसे निकामया।
ततो यमत्वं तव देव विश्रुतं
निबोध चेमां गिरमीरितां मया॥
अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः॥
एवं प्रायश्च लोकोऽयं मनुष्याः शक्तिपेशलाः।
सन्तस्त्वेवाप्यमित्रेषु दयां प्राप्तेषु कुर्वते॥
(महा०, वन० २९७। ३४—३६)

पाकर आनन्द होता है, तेरी यह बात वैसी ही प्रिय लगनेवाली है। इस सत्यवान्‌के जीवनके सिवा तू फिर अभीष्ट वर माँग ले।

सावित्रीने कहा—मेरे पिता राजा अश्वपति पुत्रहीन हैं; उनके अपने कुलकी वृद्धि करनेवाले सौ औरस पुत्र हों—यह मैं तीसरा वर माँगती हूँ।

यमराज बोले—राजपुत्री! तेरे पिताके कुलकी वृद्धि करनेवाले सौ तेजस्वी पुत्र होंगे। अब तेरी इच्छा पूर्ण हो गयी, तू लौट जा; अब बहुत दूर आ गयी है।

सावित्रीने कहा—पतिदेवकी सन्निधिके कारण यह कुछ दूरी नहीं जान पड़ती। मेरा मन तो बहुत दूर-दूरकी दौड़ लगाता है। अतः अब मैं जो बात कहती हूँ, उसे भी सुननेकी कृपा करें। आप विवस्वान् (सूर्य)-के प्रतापी पुत्र हैं, इसलिये पण्डितजन आपको 'वैवस्वत' कहते हैं। आप शत्रु-मित्रादिके भेद-भावको छोड़कर सबका समानरूपसे न्याय करते हैं, इसीसे सब प्रजा धर्मका आचरण करती है और आप 'धर्मराज' कहलाते हैं। इसके सिवा मनुष्य सत्पुरुषोंका जैसा विश्वास करता है, वैसा अपना भी नहीं करता। इसलिये वह सबसे ज्यादा सत्पुरुषोंमें ही प्रेम करना चाहता है और विश्वास सभी जीवोंको सुहृदताके कारण हुआ करता है; अतः सुहृदताकी अधिकताके कारण ही सब लोग संतोंमें विशेषरूपसे विश्वास किया करते हैं।*

---

* विवस्वतस्त्वं तनयः प्रतापवां-
स्ततो हि वैवस्वत उच्यसे बुधैः।
समेन धर्मेण चरन्ति ताः प्रजा-
स्ततस्तवेहेश्वर धर्मराजता॥
आत्मन्यपि न विश्वासस्तथा भवति सत्सु यः।
तस्मात् सत्सु विशेषेण सर्वः प्रणयमिच्छति॥
सौहृदात् सर्वभूतानां विश्वासो नाम जायते।
तस्मात् सत्सु विशेषेण विश्वासं कुरुते जनः॥
(महा०, वन० २९७। ४१—४३)

यमराज बोले—सुन्दरी! तूने जैसी बात कही है, वैसी मैंने तेरे सिवा और किसीके मुँहसे नहीं सुनी। इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तू इस सत्यवान्के जीवनके सिवा कोई भी चौथा वर माँग ले और यहाँसे लौट जा।

सावित्रीने कहा—मेरे सत्यवान्के द्वारा कुलकी वृद्धि करनेवाले बड़े बलवान् और पराक्रमी सौ औरस पुत्र हों—यह मैं चौथा वर माँगती हूँ।

यमराज बोले—अबले! तेरे बल और पराक्रमसे सम्पन्न सौ पुत्र होंगे, जिनसे तुझे बड़ा आनन्द प्राप्त होगा। राजपुत्री! अब तू लौट जा, जिससे तुझे थकान न हो। तू बहुत दूर आ गयी है।

सावित्रीने कहा—सत्पुरुषोंकी वृत्ति निरन्तर धर्ममें ही रहा करती है, वे कभी दुःखित या व्यथित नहीं होते। सत्पुरुषोंके साथ जो सत्पुरुषोंका समागम होता है, वह कभी निष्फल नहीं होता और संतोंसे संतोंको कभी भय भी नहीं होता। सत्पुरुष सत्यके बलसे सूर्यको भी अपने समीप बुला लेते हैं, वे अपने तपके प्रभावसे पृथ्वीको धारण किये हुए हैं। संत ही भूत और भविष्यत्के आधार हैं, उनके बीचमें रहकर सत्पुरुषोंको कभी खेद नहीं होता। यह सनातन सदाचार सत्पुरुषोंद्वारा सेवित है—ऐसा जानकर सत्पुरुष परोपकार करते हैं और प्रत्युपकारकी ओर कभी दृष्टि नहीं डालते।*

---

* सतां सदा शाश्वतधर्मवृत्तिः सन्तो न सीदन्ति न च व्यथन्ति।
सतां सद्भिर्नाफलः संगमोऽस्ति सद्भ्यो भयं नानुवर्तन्ति सन्तः॥
सन्तो हि सत्येन नयन्ति सूर्यं सन्तो भूमिं तपसा धारयन्ति।
सन्तो गतिर्भूतभव्यस्य राजन् सतां मध्ये नावसीदन्ति सन्तः॥
आर्यजुष्टमिदं वृत्तमिति विज्ञाय शाश्वतम्।
सन्तः परार्थं कुर्वाणा नावेक्षन्ति परस्परम्॥
(महा०, वन० २९७। ४७—४९)

यमराज बोले—पतिव्रते! जैसे-जैसे तू मुझे गम्भीर अर्थसे युक्त एवं चित्तको प्रिय लगनेवाली धर्मानुकूल बातें सुनाती जाती है, वैसे-वैसे ही तेरे प्रति मेरी अधिकाधिक श्रद्धा होती जाती है। अब तू मुझसे कोई अनुपम वर माँग ले।

सावित्रीने कहा—हे मानद! आपने जो मुझे पुत्रप्राप्तिका वर दिया है, वह बिना दाम्पत्यधर्मके पूर्ण नहीं हो सकता। अतः अब मैं यही वर माँगती हूँ कि ये (सत्यवान्) जीवित हो जायँ। इससे आपहीका वचन सत्य होगा; क्योंकि पतिके बिना तो मैं मौतके मुखमें पड़ी हुई हूँ। पतिके बिना मुझे कैसा ही सुख मिले, मुझे उसकी इच्छा नहीं है; पतिके बिना मुझे स्वर्गकी भी कामना नहीं है; पतिके बिना यदि लक्ष्मी आवे तो मुझे उसकी भी आवश्यकता नहीं है तथा पतिके बिना तो मैं जीवित रहना भी नहीं चाहती*। आपहीने मुझे सौ पुत्र होनेका वर दिया है और फिर भी आप मेरे पतिदेवको लिये जा रहे हैं। अतः मैं जो यह वर माँग रही हूँ कि ये (सत्यवान्) जीवित हो जायँ, इससे भी आपका ही वचन सत्य होगा।

यह सुनकर सूर्यपुत्र यम बड़े प्रसन्न हुए और 'ऐसा ही हो' कहते हुए सत्यवान्‌का बन्धन खोल दिया। इसके बाद वे सावित्रीसे कहने लगे, 'हे कुलनन्दिनी कल्याणी! ले, मैं तेरे पतिको छोड़ता हूँ। अब यह सर्वथा नीरोग हो जायगा। तू इसे घर

---

* न कामये भर्तृविनाकृता सुखं
न कामये भर्तृविनाकृता दिवम्।
न कामये भर्तृविनाकृता श्रियं
न भर्तृहीना व्यवसामि जीवितुम्॥
(महा०, वन० २९७। ५३)

ले जा, इसके सभी मनोरथ पूर्ण होंगे। यह तेरे सहित चार सौ वर्षतक जीवित रहेगा तथा धर्मपूर्वक यज्ञानुष्ठान करके लोकमें कीर्ति प्राप्त करेगा। इससे तेरे गर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न होंगे।' इस प्रकार सावित्रीको वर देकर और उसे लौटाकर प्रतापी धर्मराज अपने लोकको चले गये।

यमराजके चले जानेपर सावित्री अपने पतिको पाकर उस स्थानपर आयी, जहाँ सत्यवान्का शव पड़ा था। पतिको पृथ्वीपर पड़ा देखकर वह उसके पास बैठ गयी और उसका सिर उठाकर गोदमें रख लिया। थोड़ी ही देरमें सत्यवान्के शरीरमें चेतना आ गयी और वह सावित्रीकी ओर बार-बार प्रेमपूर्वक देखता हुआ इस प्रकार बातें करने लगा मानो बहुत दिनोंके प्रवासके बाद लौटा हो। वह बोला, 'मैं बड़ी देरतक सोता रहा, तुमने जगाया क्यों नहीं ? और यह काले रंगका मनुष्य कौन था, जो मुझे खींचे लिये जाता था?' सावित्रीने कहा, 'पुरुषश्रेष्ठ ! आप बड़ी देरसे मेरी गोदमें सोये पड़े हैं। वे श्यामवर्णके पुरुष प्रजाका नियन्त्रण करनेवाले देवश्रेष्ठ भगवान् यम थे। अब वे अपने लोकको चले गये हैं। देखिये, सूर्य अस्त हो चुका है और रात्रि गाढ़ी होती जा रही है; इसलिये ये सब बातें तो जैसे-जैसे हुई हैं, कल सुनाऊँगी। इस समय तो आप उठकर माता-पिताके दर्शन कीजिये।'

सत्यवान्ने कहा—ठीक है, चलो। देखो, अब मेरे सिरमें दर्द नहीं है और न मेरे किसी और अंगमें पीड़ा ही है। मेरा सारा शरीर स्वस्थ प्रतीत होता है। मैं चाहता हूँ तुम्हारी कृपासे मैं शीघ्र ही अपने वृद्ध माता-पिताके दर्शन करूँ। प्रिये ! मैं किसी दिन भी देर करके आश्रममें नहीं जाता था। सन्ध्या होनेसे पहले ही

मेरी माता मुझे बाहर जानेसे रोक देती थी। दिनमें भी, जब मैं आश्रमसे बाहर जाता तो मेरे माता-पिता मेरे लिये चिन्तामें डूब जाते थे और वे अधीर होकर आश्रमवासियोंको साथ ले मुझे ढूँढ़नेको चल देते थे। अतएव कल्याणी! मुझे इस समय अपने अन्धे पिताकी और उनकी सेवामें लगी हुई दुर्बल शरीर अपनी माताकी जितनी चिन्ता हो रही है, उतनी अपने शरीरकी भी नहीं है। मेरे परम पूज्य पवित्रतम माता-पिता मेरे लिये आज कितना सन्ताप सह रहे होंगे! जबतक मेरे माता-पिता जीवित हैं, तभीतक मैं भी जीवन धारण किये हूँ।'

पतिकी बात सुनकर सावित्री खड़ी हो गयी। उसने सत्यवान्‌को उठाया, अपने बायें कन्धेपर उसका हाथ रखा और दायाँ हाथ उसकी कमरमें डालकर उसे ले चली। तब सत्यवान्‌ने कहा, 'भीरु! इस रास्तेमें आने-जानेका अभ्यास होनेके कारण मैं इससे अच्छी तरह परिचित हूँ और अब वृक्षोंके बीचमें होकर चन्द्रमाकी चाँदनी भी फैलने लगी है। हम कल जिस रास्तेपर फल बीन रहे थे, वही आ गया है; इसलिये अब सीधे इसी मार्गसे चली चलो, कुछ और सोच-विचार मत करो। मैं भी अब स्वस्थ और सबल हो गया हूँ और माता-पिताको देखनेकी भी मुझे जल्दी है।' ऐसा कहकर वह जल्दी-जल्दी आश्रमकी ओर चलने लगा।

❑❑

द्युमत्सेन और शैब्याकी चिन्ता, सत्यवान् और सावित्रीका आश्रममें पहुँचना तथा द्युमत्सेनका राज्य पाना

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! इसी बीचमें द्युमत्सेनको दृष्टि प्राप्त हो गयी और उन्हें सब वस्तुएँ दिखायी देने लगीं। पुत्रके न आनेसे उन्हें बड़ी चिन्ता हुई और रानी शैब्याके सहित वे उसे सब आश्रमोंमें घूमकर देखने लगे। फिर उनके पास समस्त आश्रमवासी ब्राह्मण आये और उन्हें धीरज बँधाकर उनके आश्रममें ले गये। वहाँ बूढ़े-बूढ़े ब्राह्मण उन्हें प्राचीन राजाओंकी तरह-तरहकी कथाएँ सुनाकर धैर्य बँधाने लगे। उनमें एक सुवर्ण नामका ब्राह्मण था। वह बड़ा सत्यवादी था। उसने कहा, 'सत्यवान्की स्त्री सावित्री तप, इन्द्रियसंयम और सदाचारका सेवन करनेवाली है; इसलिये वह अवश्य जीवित होगा।' एक दूसरे ब्राह्मण गौतमने कहा, 'मैंने अंगोंसहित वेदोंका अध्ययन किया है और बहुत तपस्या भी की है तथा कुमारावस्थामें ब्रह्मचर्यपालन और गुरु तथा अग्निको तृप्त भी किया है। इस तपस्याके प्रभावसे मुझे दूसरोंके मनकी बात मालूम हो जाती है, अतः मेरी बात सच मानो, सत्यवान् अवश्य जीवित है।' फिर सभी ऋषि कहने लगे, 'सत्यवान्की स्त्री सावित्रीमें अवैधव्यके सूचक सभी शुभलक्षण विद्यमान हैं, अतः सत्यवान् जीवित ही है।' दाल्भ्यने कहा, 'देखिये, आपको दृष्टि मिली है और सावित्री व्रतका पारण किये बिना ही सत्यवान्के साथ गयी है; अतः उसे अवश्य जीवित होना चाहिये।'

जब सत्यवक्ता ऋषियोंने द्युमत्सेनको इस प्रकार समझाया तो उन सबकी बात मानकर वे स्थिर हो गये। इसके कुछ ही देर बाद सत्यवान्के सहित सावित्री आ गयी और वे दोनों प्रसन्न होते हुए आश्रममें प्रविष्ट कर गये। उन्हें देखकर ब्राह्मणोंने कहा, 'लो राजन्!

तुम्हें पुत्र मिल गया और नेत्र भी प्राप्त हो गये।' फिर सत्यवान्से पूछा, 'सत्यवान्! तुम स्त्रीके साथ गये थे, सो पहले ही क्यों नहीं लौट आये? इतनी रात बीतनेपर कैसे लौटे हो! ऐसी क्या अड़चन आ गयी थी? राजकुमार! आज तो तुमने अपने माता-पिता और हम सबको भी बड़ी चिन्तामें डाल दिया, सो हम नहीं जानते क्या कारण हुआ। जरा सब बातें बताओ तो।'

सत्यवान्ने कहा—मैं पिताजीसे आज्ञा लेकर सावित्रीके सहित गया था। वहाँ जंगलमें लकड़ी काटते-काटते मेरे सिरमें दर्द होने लगा। उस समय ऐसा जान पड़ता है कि उस वेदनाके कारण ही मैं बहुत देरतक सोता रहा। इतनी देर तो मैं पहले कभी नहीं सोया। आप सब लोग किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। इसी निमित्तसे हमें आनेमें देरी हो गयी और कोई कारण नहीं है।

गौतम बोले—सत्यवान्! तुम्हारे पिता द्युमत्सेनको आज अकस्मात् दृष्टि प्राप्त हो गयी है। तुम्हें वास्तविक कारणका पता नहीं है, ये सब बातें तो सावित्री बता सकती है। सावित्री! तुझे हम प्रभावमें साक्षात् सावित्री (ब्रह्माणी)-के समान ही समझते हैं। तुझे भूत-भविष्यत्की बातोंका भी ज्ञान है। तू इसका कारण अवश्य जानती है। हमें उसे सुननेकी इच्छा है, सो यदि गोपनीय न हो तो हमें भी कुछ सुना दे।

सावित्रीने कहा—आप जैसा समझ रहे हैं, वैसी ही बात है; आपका विचार मिथ्या नहीं हो सकता। मेरी बात भी आपसे छिपी नहीं है। अतः जो सत्य है, वही सुनाती हूँ; श्रवण कीजिये। नारदजीने मुझे यह बता दिया था कि अमुक दिन तेरे पतिकी मृत्यु होगी। वह दिन आज आया था, इसीसे मैंने इन्हें वनमें अकेले नहीं जाने दिया। जब ये सोये हुए थे तो साक्षात् यमराज आये और इन्हें बाँधकर दक्षिणदिशाको ले चले। मैंने सत्य वचनोंद्वारा उन देवश्रेष्ठकी स्तुति की। इसपर उन्होंने मुझे पाँच

वर दिये, सो सुनिये। ससुरजीको नेत्र और राज्य प्राप्त हों—दो वर तो ये थे; मेरे पिताजीको सौ पुत्र मिलें और सौ पुत्र मुझे प्राप्त हों—दो ये थे; तथा पाँचवें वरके अनुसार मेरे पतिदेव सत्यवान्‌को चार सौ वर्षकी आयु प्राप्त हुई है। पतिदेवकी जीवन-प्राप्तिके लिये ही मैंने यह व्रत किया था।* इस प्रकार विस्तारसे मैंने आपको सब कारण बता दिया।

ऋषियोंने कहा—साध्वी! तू सुशीला, व्रतशीला और पवित्र आचरणवाली है। तूने उत्तम कुलमें जन्म लिया है। राजा द्युमत्सेनका दुःखाक्रान्त परिवार आज अन्धकारमय गड्ढेमें डूबा जाता था, सो तूने उसे बचा लिया।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! वहाँ एकत्रित हुए ऋषियोंने इस प्रकार प्रशंसा करके स्त्रीरत्नभूता सावित्रीका सत्कार किया तथा राजा और राजकुमारकी अनुमति लेकर प्रसन्नचित्तसे अपने-अपने आश्रमोंको चले गये। दूसरे दिन शाल्वदेशके समस्त राजकर्मचारियोंने आकर द्युमत्सेनसे कहा कि 'वहाँ जो राजा था उसे उसीके मन्त्रीने मार डाला है तथा उसके किसी सहायक और स्वजनको भी जीवित नहीं छोड़ा है। शत्रुकी सारी सेना भाग गयी है और सारी प्रजाने आपके विषयमें एकमत होकर यह निश्चय किया है कि उन्हें दीखता हो अथवा न दीखता हो, वे ही हमारे राजा होंगे। राजन्! ऐसा निश्चय करके ही हमें यहाँ भेजा गया है। हम आपके लिये ये सवारियाँ और आपकी चतुरंगिणी सेना लाये हैं। आपका मंगल हो, अब प्रस्थान करनेकी

---

* चक्षुषी च स्वराज्यं च द्वौ वरौ श्वशुरस्य मे।
लब्धं पितुः पुत्रशतं पुत्राणां चात्मनः शतम्॥
चतुर्वर्षशतायुर्मे भर्ता लब्धश्च सत्यवान्।
भर्तुर्हि जीवितार्थं तु मया चीर्णं त्विदं व्रतम्॥
(महा०, वन० २९८। ४०-४१)

कृपा कीजिये। नगरमें आपकी जय घोषित कर दी गयी है। आप अपने बाप-दादोंके राज्यपर चिरकालतक प्रतिष्ठित रहें।

फिर राजा द्युमत्सेनको नेत्रयुक्त और स्वस्थ शरीरवाला देखकर उन सभीके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे और उन्होंने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया। राजाने आश्रममें रहनेवाले वृद्ध ब्राह्मणोंका अभिवादन किया और उनसे सत्कृत हो अपनी राजधानीको चल दिये। वहाँ पहुँचनेपर पुरोहितोंने बड़ी प्रसन्नतासे द्युमत्सेनका राज्याभिषेक किया और उनके पुत्र महात्मा सत्यवान्को युवराज बनाया। इसके बहुत समय बाद सावित्रीके सौ पुत्र हुए, जो संग्राममें पीठ न दिखानेवाले और यशकी वृद्धि करनेवाले शूरवीर थे। इसी प्रकार मद्रराज अश्वपतिकी रानी मालवीके गर्भसे उसके वैसे ही सौ भाई हुए। इस प्रकार सावित्रीने अपनेको तथा माता-पिता, सास-ससुर और पतिके कुल—इन सभीको संकटसे उबार लिया। इसी प्रकार यह सावित्रीके समान शीलवती, कुल-कामिनी, कल्याणी द्रौपदी भी आप सबका उद्धार कर देगी।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार मार्कण्डेयजीके समझानेसे शोक और सन्तापसे मुक्त होकर महाराज युधिष्ठिर काम्यकवनमें रहने लगे। जो पुरुष इस परमपवित्र सावित्रीचरित्रको श्रद्धापूर्वक सुनेगा, वह समस्त मनोरथोंके सिद्ध होनेसे सुखी होगा और कभी दुःखमें नहीं पड़ेगा।*

❑❑

---

* यश्चेदं शृणुयाद् भक्त्या सावित्र्याख्यानमुत्तमम्।
स सुखी सर्वसिद्धार्थो न दुःखं प्राप्नुयान्नरः॥
(महा०, वन० २९९। १७)

सावित्रीके जीवनसे शिक्षा

प्रत्येक माता-बहिनों एवं भाइयोंको इससे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि उत्तम पुरुष एक ही बार कहते हैं, अपनी वाणीसे जो वचन कह दिया जाय उसका पालन करना चाहिये। भाइयोंको यह विचार करना चाहिये कि भाइयोंमें बँटवारा जीवनमें एक ही बार होता है। अतः बँटवारा जिस समय हो उस समय बड़ी उदारता एवं त्यागपूर्वक करना चाहिये जो कल्याण करनेवाला और संसारमें उज्ज्वल तथा लोगोंके लिये आदर्श हो। तीसरी बात यह है कि सावित्रीका जो यह व्रत है कि मनसे यदि पतिका वरण कर लिया तो चाहे कभी भी पतिके प्राण चले जायँ मैं दूसरे पुरुषका नाम भी नहीं ले सकती। सावित्रीने सत्यवान्‌के साथ विवाह किया। पातिव्रत धर्मको समझकर सत्यवान्‌का उसने पतिरूपमें वरण किया। पतिकी आयु एक साल है यह जानकर भी विवाह किया, भूलकर नहीं किया। उसका यह निश्चय था कि यदि मैं पातिव्रत धर्मका पालन करूँगी तो मेरा पति कभी नहीं मरेगा। सावित्रीके इस आख्यानसे बहुत-सी शिक्षाएँ मिलती हैं—वे सर्वदा आचरणीय हैं। अभिभावकको वरकी प्रधानता देखनी चाहिये। घरकी प्रधानता नहीं। सावित्री वरकी प्रधानता देखी, घरकी नहीं। यह भी शिक्षा लेनी चाहिये कि सावित्री जब अपने ससुराल आयी तो उसके पिताका दिया हुआ जो भी गहना, अंगूठी, जेवरादि था उसे उतारकर ससुराल-जैसा सादगीका वेश ग्रहण कर अपना समय बिताया। पतिदेव कंद-मूल-फल खाते हैं, वह भी वही खाती; उसीको अमृतके समान समझती। माता-बहिनोंको इससे यह भी शिक्षा लेनी चाहिये कि सावित्री

जिस प्रकार अपने सास-ससुर तथा पतिकी सेवा करती, उसी प्रकार अपने सास-ससुर तथा पतिकी सेवा करनी चाहिये। यदि वरदान माँगे तो पहले अपने लिये नहीं माँगे। सास-ससुरके लिये माँगे, उसके बाद अपने पिताके लिये माँगे और अन्तमें अपने लिये माँगे। यह कैसा त्याग है, यह त्याग भी सीखना चाहिये। सावित्रीने यमराजसे किस प्रकार वार्तालाप किया उससे हमलोगोंको यह भी सीखना चाहिये। उसके वार्तालापमें केवल स्वार्थका ही त्याग नहीं बल्कि उसने यमराजको खुश करनेके लिये बहुत ही विनययुक्त वचन कहनेका ढंग है, नीतिके वचन कहे हैं। प्रसन्न होकर यमराजको यह कहना पड़ा कि तेरे जैसी स्त्री मुझे नहीं मिली, तुमने जैसे वचन कहे उससे हमको जीत लिया। इस आख्यानसे हमलोगोंको हर एक चरित्रसे शिक्षा लेनी चाहिये। सत्यवान् और सावित्रीके इस चरित्रसे उनके गुणोंको धारण करना चाहिये, उनके माता-पितामें, सावित्रीके सास-ससुरमें जो गुण हैं उनको धारण करना चाहिये और यह समझना चाहिये कि जो वनमें सादगीसे रहकर अपना जीवन बिताते हैं उनकी बड़ी महिमा है। राजा द्युमत्सेन और उनकी स्त्री भी बड़े उच्चकोटिके पुरुष थे। सावित्रीके माता-पिता भी बड़े उच्चकोटिके पुरुष थे। सावित्री-सत्यवान्का आख्यान ज्येष्ठमासमें वट-सावित्री-व्रतके दिन सुनने और वट-सावित्री-व्रत करनेका विधान है। यह आख्यान-श्रवण विशेष सौभाग्यदायक है। इससे विधवा माता-बहिनोंको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि उनके प्राण भले ही चले जायँ, किंतु दूसरे पुरुषका कभी स्वप्नमें भी नाम नहीं लें।

सूक्तियाँ

१—न प्रमादश्च धर्मेषु कर्तव्यस्ते कथञ्चन॥

(महा०, वन० २९३। १३)

‘धर्मोंके पालनमें तुम्हें कभी किसी तरह भी प्रमाद नहीं करना चाहिये।’

२—‘सन्तानं परमो धर्मः’ (महा०, वन० २९३। १५)

‘न्याययुक्त सन्तानोत्पादन परम धर्म है।’

३—अप्रदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन् पतिः।
मृते भर्तरि पुत्रश्च वाच्यो मातुररक्षिता॥

(महा०, वन० २९३। ३५)

‘विवाहके योग्य हो जानेपर कन्याका दान न करनेवाला पिता निन्दनीय है। ऋतुकालमें पत्नीके साथ समागम न करनेवाला पति निन्दाका पात्र है तथा पतिके मर जानेपर विधवा माताकी रक्षा न करनेवाला पुत्र धिक्कारके योग्य है।’

४—सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत् सकृत्॥

(महा०, वन० २९४। २६)

‘धन आदिका बँटवारा एक ही बार होता है, कन्या एक ही बार दी जाती है तथा श्रेष्ठ दाता ‘मैं दूँगा’—यह कहकर एक ही बार वचनदान करता है। ये तीन बातें एक-एक बार ही होती हैं।’

५—‘सुखं च दुःखं च भवाभवात्मकम्’

(महा०, वन० २९५। १०)

‘सुख और दुःख तो उत्पन्न और नष्ट होनेवाले हैं।’

६—प्राहुः साप्तपदं मैत्रं बुधास्तत्त्वार्थदर्शिनः।

(महा०, वन० २९७। २३)

‘तत्त्वार्थदर्शी विद्वान् ऐसा कहते हैं कि सात पग साथ चलनेमात्रसे मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।’

७—सतां सकृत्सङ्गतमीप्सितं परं
ततः परं मित्रमिति प्रचक्षते।
न चाफलं सत्पुरुषेण सङ्गतं
ततः सतां सन्निवसेत् समागमे॥

(महा०, वन० २९७। ३०)

'सत्पुरुषोंका एक बारका समागम भी अत्यन्त अभीष्ट होता है। उनके साथ मित्रता हो जाना उससे भी बढ़कर बताया गया है। साधु पुरुषका संग कभी निष्फल नहीं होता; अतः सदा सत्पुरुषोंके ही समीप रहना चाहिये।'

८—अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः॥

(महा०, वन० २९७। ३५)

'मन, वाणी और क्रियाद्वारा किसी भी प्राणीसे द्रोह न करना, सबपर दयाभाव बनाये रखना और दान देना—यह साधु पुरुषोंका सनातनधर्म है।'

९—सौहृदात् सर्वभूतानां विश्वासो नाम जायते ।
तस्मात् सत्सु विशेषेण विश्वासं कुरुते जनः॥

(महा०, वन० २९७। ४३)

'सौहार्दसे ही समस्त प्राणियोंका एक-दूसरेके प्रति विश्वास उत्पन्न होता है। सन्तोंमें सौहार्द होनेके कारण ही सब लोग उनपर अधिक विश्वास करते हैं।'

१०—सतां सदा शाश्वतधर्मवृत्तिः
सन्तो न सीदन्ति न च व्यथन्ति।

सतां सद्भिर्नाफलः सङ्गमोऽस्ति
सद्भ्यो भयं नानुवर्तन्ति सन्तः॥

(महा०, वन० २९७। ४७)

'सत्पुरुषोंकी वृत्ति निरन्तर धर्ममें ही लगी रहती है। श्रेष्ठ पुरुष कभी दुःखी या व्यथित नहीं होते। सत्पुरुषोंका सन्तोंके साथ जो समागम होता है, वह कभी निष्फल नहीं होता। श्रेष्ठ पुरुष सन्तोंसे कभी भय नहीं मानते।'

□□